5th Proof 19Sep13

आत्मा

और

परमात्मा

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

परमात्मा (ईश्वर)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही दयावान और अत्यन्त कृपाशील है।"

दो शब्द

"आत्मा और परमात्मा" एक ऐसा विषय है जिसपर सदैव विचार किया जाता रहा है। अपना और अपने स्रष्टा का यदि समुचित ज्ञान न हो तो मनुष्य और पत्थर में अन्तर ही क्या रह जाता है।

हमने विशेष रूप से भारत के परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त विषय पर विचार व्यक्त करने की कोशिश की है और इस पर दृष्टि डाली है कि भारत के ऋषियों और दार्शनिकों की इस सम्बन्ध में क्या धारणा रही है।

पुस्तक के अन्त में यह दिखाया गया है कि उपरोक्त विषय में इस्लाम का मार्गदर्शन क्या है। आशा है कि हमारे पाठक गम्भीरता और निर्पेक्ष-भाव से इसपर ध्यान देंगे। हमें विश्वास है कि अध्ययन के पश्चात् वे महसूस करेंगे कि जीवन-पथ के लिए इस्लाम का मार्गदर्शन पूर्ण और एक आदर्श मार्गदर्शन है।

इस्लाम के कार्यकर्त्ता जो यह चाहते हैं कि इस्लाम का शुभ सन्देश सामान्य रूप से लोगों तक पहुँच सके उनके लिए भी यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह हमारे इस प्रयास को स्वीकृति प्रदान करे। ज्ञान और जीवन को सफल बनाने की कामना करनेवाले इससे लाभान्वित हों।

विनीत

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

आत्मा

विषय प्रवेश

मानव क्या है और क्या नहीं है? क्या वह मात्र शरीर है या शरीर के अतिरिक्त कुछ और भी? यदि वह शरीर के अतिरिक्त कुछ और भी है तो वह और क्या है? उसका गुण और स्वभाव क्या है? मनुष्य का यदि कोई भविष्य है तो अनिवार्यतः वह उसी पर निर्भर करेगा जो भौतिक शरीर से भिन्न है। क्योंकि भौतिक शरीर तो मरणधर्मा है और मृत्यु कोई भविष्य नहीं।

एक प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि शरीर के सिवा मनुष्य कुछ और है जिसे आत्मा की संज्ञा दी जाती है तो उसका वर्तमान शरीर से किस प्रकार का सम्बन्ध है? शरीर उसके लिए उपयोगी और सहायक है या उसकी उन्नति और विकास में बाधक है?

मनुष्य के अस्तित्व और उसके व्यक्तित्व का स्रोत और उद्गम किसे कहेंगे? यह भी एक मौलिक प्रश्न है जो मानवजाति के समक्ष रहा है।

क्या मनुष्य अपना स्रष्टा स्वयं है या उसका सृष्टिकर्त्ता उससे भिन्न कोई और सत्ता है? फिर सत्ता का गुण और स्वभाव क्या है जिसे हम अपने अस्तित्व का स्रोत निर्धारित कर सकते हैं? जगत् में उसने मानव को अपनी किस योजना और उद्देश्य के अन्तर्गत पैदा किया है और उस योजना के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए हमें जीवन की कौन-सी प्रणाली अपनानी होगी?

जीवन के इन मौलिक प्रश्नों का सही उत्तर जाने बिना जीवन में जो क़दम भी हम उठाएँगे, वह अँधेरे में उठाएँगे। अँधरे में चलना कितना ख़तरनाक होता है, इसे कौन नहीं जानता!

इतिहास की गवाही

मानव-इतिहास बताता है कि दुनिया में ऐसे महापुरुषों की कमी नहीं रही है जिन्होंने आशा के चिराग़ जलाए हैं। उनका आह्वान यह था कि मनुष्य उज्ज्वल भविष्य के लिए पैदा किया गया है। अंधकारमय मृत्यु उसकी नियति नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में मनुष्य के अपने कुछ कर्तव्य भी होते हैं जिनको पूरा करना उसका दायित्व होता है। यदि वह अपने दायित्व की उपेक्षा करता है तो वह जीवन के प्रति अपराध की नीति अपनाता है जिसका परिणाम अत्यन्त भयावह रूप में उसके सामने आकर रहेगा। इसका एहसास यदि आज उसे नहीं होता तो कल उसे अपनी ग़लती का एहसास अवश्य होगा और फ़िर वह अपने लिए कुछ न कर सकेगा। और अपने जीवन के दुःखद परिणाम का ज़िम्मेदार वह स्वयं होगा।

मनुष्य का अपना उज्ज्वल भविष्य अमरत्व के रूप में या दुःखद और निराशाजनक रूप में वर्तमान में प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देता। यही कारण है कि अधिकतर लोगों को अपने भविष्य की चिन्ता नहीं होती। वे किसी नैतिक ज़िम्मेदारी का बोझ उठाना नहीं चाहते। संकुचित दृष्टिकोण के कारण वे इसे अपने लिए असुविधा की चीज़ समझते हैं। वे स्वच्छन्दता का जीवन जीना चाहते हैं। वे वर्तमान पर सन्तुष्ट दिखाई देते हैं। वर्तमान सुख-सुविधा को ही अपने लिए सब कुछ जानते हैं, अर्थात एक प्रकार से पाशविक जीवन ही उनके लिए आदर्श होता है। जिस प्रकार एक पशु का जीवन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि वह साँस लेता, खाता-पिता और समाप्त हो जाता है; इसके अतिरिक्त वह कुछ सोच भी नहीं सकता। यही दशा उन लोगों की होती

है, जो समझते हैं कि लौकिक सुख-सुविधा और धन या सम्पत्ति का अर्जन ही जीवन की सफलता है। वे जीवन का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं। भौतिक लाभ-हानि के सिवा न कोई लाभ है और न हानि। जो अवसर जीवन में उन्हें मिला है उसे समृद्ध बनाएँ। मृत्यु के पश्चात भी हम होंगे, इसे वे अपने ख़याल में भी नहीं लाते और न यह चीज़ उनके आनन्द का कोई विषय ही है। वे अपनी भौतिकता के कारण मर्यादाओं का उल्लंघन करते रहते हैं। स्वार्थपरता उन्हें कठोर बना देती है। प्रेम, दयाभाव, करुणा और दानशीलता की भावना को उनके यहाँ कोई विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं। ईर्ष्या, स्वार्थपरता, लोलुपता और कृपणता ही उनका जीवन होता है। वे दूसरों में अपने को नहीं देखते, अर्थात् दूसरों को अपना नहीं जानते। सार्वभौमिकता का दृष्टिकोण उनका नहीं होता और न हो सकता है।

आत्मा का महत्त्व

आत्मा की पहचान और उसका ज्ञान जब तक न हो दृष्किोण में व्यापकता नहीं आ सकती। भौतिकता मनुष्य को शारीरिक काया और शारीरिक इच्छाओं का क़ैदी बना देती है। वह अपने ही गिर्द चक्कर लगाता है। जगत् और जीवन की व्यापकता और जीवन की सम्भावनाओं से वह अनभिज्ञ रहता है। विराट से कटकर वह अत्यन्त छोटा हो जाता है। महानता को उसकी प्रतीक्षा थी, किन्तु तुच्छता उसका दामन पकड़ लेती है। उसे अपनी हीन दशा का एहसास भी नहीं होता।

मनुष्य की श्रेष्ठता और बड़ाई इसपर निर्भर करती है कि मनुष्य को अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान हो और वह उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने दे।

मनुष्य ने जीवन में जो उन्नति की है वह उसके शरीर की नहीं, उसकी आत्मा की देन है। यह उन्नति चाहे कला या साहित्य के क्षेत्र से

सम्बन्ध रखती हो या इसका सम्बन्ध विज्ञान, चिन्तन और दर्शन आदि से हो।

मनुष्य जो कार्य करता है उसका कारण इस जड़ और अचेतन शरीर को नहीं कह सकते। कार्य के लिए चेतन आत्मा की आवश्यकता है। जड़ पदार्थ को चेतना का स्रोत नहीं कहा जा सकता। चेतना एवं विवेक के अभाव में कोई कार्य नहीं किया जा सकता। कार्य से अभिप्रेत ऐसे कार्य होते हैं जो किसी प्रयोजन और उद्देश्य के अन्तर्गत किए जाते हैं।

मनुष्य वास्तव में आध्यात्मिक प्राणी है। वह जड़ पदार्थ से नितान्त भिन्न है। उसे स्वयं का तथा अपने चतुर्दिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। उसे वर्तमान और भूत की चेतना भी है। आत्मिक सत्ता होने के कारण उसे यह आकांक्षा भी होती है कि उसका भविष्य पूर्ण हो। उसमें इसकी प्रबल इच्छा बनी रहती है कि उसे पूर्णता प्राप्त हो और वह सुख और आनन्द का अधिकारी बन सके। मनुष्य को मात्र पदार्थ का चमत्कार समझना सत्य नहीं हो सकता। वह जानता है कि उसका शरीर मरणधर्मा है। एक दिन वह अवश्य नष्ट हो जाएगा किन्तु वह स्वयं मृत होने पर राज़ी नहीं। मृत्यु आत्मा का स्वभाव नहीं। मनुष्य की प्रकृति में प्रगतिशीलता की प्रवृति पाई जाती है। शारीरिक मृत्यु भी वास्तव में उसकी प्रगति ही का एक लक्षण है जिसे साधारणतया लोग नहीं जानते। मृत्यु से उसकी प्रगति की राह हमवार होती है, क्योंकि मृत्युधर्मा शरीर के साथ आत्मा की सतत यात्रा सम्भव नहीं।

भौतिकवाद के स्थूल एवं अपरिष्कृत सिद्धान्त का – जो मृत्यु के पश्चात् किसी को स्वीकार नहीं करता – मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ मेल और सामंजस्य स्थापित नहीं होता। प्रकृतिवाद या यान्त्रिकवाद की यह धारणा कि विकास की समस्त प्रक्रियाएँ एक दिन समाप्त हो जाएँगी, बुद्धिसंगत है। रसल ने भी इसी की पुष्टि की है। सभी कुछ

विनाश के गर्त में विलीन होने को है, यह विचार अत्यन्त निराशायुक्त है जबकि मनुष्य आशा की किरण लेकर पैदा हुआ है।

यह विचार आधुनिक खोज से असत्य सिद्ध हो चुका है कि चेतना मस्तिष्क या चित्त की ही उपज है। दिमाग़ या मस्तिष्क भौतिक पदार्थ से निर्मित है। अतः चेतना वास्तव में जड़ पदार्थ की पैदावार (Product) है, अब यह धारणा बन चुकी है कि चेतना दिमाग़ की उपज नहीं है। चेतना की अपनी अलग सत्ता है। मस्तिष्क केवल वह साधन है जिसके द्वारा चेतना अपने-आप को व्यक्त करती है। जैसे रेडियो सेट से जो आवाज़ सुनाई देती है वह रेडियो सेट की आवाज़ नहीं है, आवाज़ तो वायुमंडल में अलग मौजूद होती है, उसकी अभिव्यक्ति रेडियो सेट के माध्यम से होती है। या इसकी मिसाल चाँद की है जो सूर्य के प्रकाश से चमकता है। चाँद में अपना कोई प्रकाश नहीं होता। ओसपेंसकी (Ouspensky) इसी धारणा का समर्थक है कि चेतना जड़ पदार्थ की पैदावार नहीं है और न हो सकती है। मानव-आत्मा भौतिक जगत् से बाहर की चीज़ है।

हममें कोई ऐसी चीज़ है जो शारीरिक परिवर्तनों के होते हुए भी अपरिवर्तित और निरन्तर मौजूद रहती है। यह चीज़ यदि मात्र भौतिक शरीर का गुण होती तो शरीर के साथ यह भी बदलती रहती। यह अपरिवर्तित निरन्तर बनी नहीं रह सकती थी।

एडिंग्टन (Eddington) का कहना है कि जब हम चेतना की आत्यान्तिक गहराइयों में पहुँचते हैं तो वहाँ एक नए आयाम में प्रवेश कर जाते हैं और स्वयं अपने निज के संकेतों (Symbols) को लेकर एक नई दुनिया निर्मित करते हैं जिसका आधार आध्यात्म होता है जो पदार्थ से परे है ।[1]

---

1. Science and Unseen World

आत्मा चेतनस्वरूप

आत्मा तो चेतनस्वरूप है। शारीरिक अवयव मस्तिष्क आदि की हैसियत सहायक वस्तु की है जिनको आप औज़ार या यंत्र कह सकते हैं। मनुष्य वास्तव में शरीर नहीं, आत्मा ही है जो अपने में पूर्ण है। जिस प्रकार आप घर में रहते हैं, घर से फ़ायदा उठाते हैं लेकिन स्वयं आप घर नहीं होते, बल्कि घर से भिन्न आपकी अलग सत्ता होती है। यदि कोई अपने को एक घर समझता है तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल है। यदि ऐसा समझ लिया जाए तो फिर वह इस घर को ही सँवारने में लगा रहेगा। वह अपने व्यक्तित्व के विकास और परिष्कार के लिए कुछ नहीं कर सकता। उसे घर की मज़बूती की चिन्ता होगी। वह उसे अधिक-से-अधिक अच्छा, सुन्दर और अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल बनाने की कोशिश करेगा। उसे भूलकर भी यह याद नहीं आएगा कि उसकी कोई आत्मा है और उस आत्मा की अपनी कुछ अपेक्षाएं हैं, जिनको पूरा करना उसका अपना कर्तव्य होता है। शरीर को जीवित रखने के लिए अन्न-जल आदि भौतिक चीज़ों की ज़रूरत होती है, उसी तरह आत्मा का भी आहार है, उसकी कुछ कामनाएँ हैं। उसकी उसे कोई चिंता न होगी।

आत्मा का वास्तविक आहार प्रेम है। उसकी इच्छा होती है कि उसे प्रेम मिले और उसका कोई प्रेम-पात्र और ईष्ट हो जिससे वह प्रेम कर सके। उसका सामीप्य और उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए वह अपने प्रेम-पात्र की इच्छाओं और आदेशों का अनुपालन करे और इसे अपना सौभाग्य समझे। और उसके सौन्दर्य की छाया में अपना जीवन व्यतीत करे और उसके सौन्दर्य के अनुरूप अपने व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण करे। उसके शब्दों को अपनी आत्मा में उतारकर अपने को कृत-कृत्य करे। यह बात पते की है :

"You are a soul with a body rather than a body with a soul."

अर्थात् वास्तव में तुम एक आत्मा हो जिसे एक शरीर उपलब्ध है। यह नहीं कि तुम एक शरीर हो जिसे एक आत्मा भी प्राप्त है।

भौतिक शरीर को अधिक महत्त्व और प्राथमिकता देने के कारण मनुष्य शरीर होकर रह जाता है और वह अपने शरीर ही के आस-पास जीता है। शारीरिक सुख-सुविधा ही उसके जीवन का उद्देश्य बन जाता है। यदि वह अपनी आत्मा के सौन्दर्य और उसकी सम्भावनाओं से परिचित हो तो वह कभी भी हतप्रभ नहीं हो सकता। मनुष्य को आत्मा के तल पर जीना आ जाए तो परमात्मा उसकी ज़रूरत बन जाएगी और वह उसे अपने से दूर भी नहीं पाएगा।

शरीर और उसके अवयव तो जड़ हैं। आत्मा चेतन स्वरूप है। शरीर की आभा का कारण भी वास्तव में आत्मा ही है। चित्त और मस्तिष्क के द्वारा जो कुछ जाना जाता है उसका प्रकाशक आत्मा ही है। हमारी बातचीत और हमारे देखने-सुनने और जो कुछ हम करते हैं उसके माध्यम से हमारी आत्मा की ही अभिव्यक्ति होती है। दूसरे शब्दों में आत्मा का प्रदर्शन विभिन्न शैलियों में होता रहता है किन्तु साधारणतया हमें इसका ख़याल नहीं होता और हमारा ध्यान केवल शरीर पर रहता है और अपने वास्तविक स्वरूप का परिचय प्राप्त नहीं होता।

इस सम्बन्ध में भारत में जो चिंतन हुआ है उसका अन्दाज़ा सर्वशः उपनिषदों के अध्ययन से किया जा सकता है। उपनिषदों में बताया गया है कि मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत से कोशों (परतों) से निर्मित हुआ है। हम यहाँ उन कोशों का उल्लेख करना चाहेंगे।

पंच-कोश

वेदान्त के अनुसार आत्मा के आवरण-रूप पाँच कोश हैं। इन आवरणों या पर्तों के सम्यक बोध एवं ज्ञान से आदमी इन आवरणों से

पार हो सकता है और आत्मा तक उसकी पहुँच हो सकती है।

(i) अन्नमय-कोश

मनुष्य का भौतिक शरीर पहला आवरण है। इसे ऋषियों ने अन्नमय कोश कहा है। यह शरीर (Physical Body) भोज्य पदार्थ से बना है इसी लिए इसे अन्नमय-कोश की संज्ञा दी गई है।

शरीर साधारणतया दीवार बन जाता है और लोग शरीर के अतिरिक्त अपने अन्दर किसी और चीज़ को नहीं देख पाते। वे इसी के होकर रह जाते हैं। यद्यपि शरीर को साफ़ और स्वच्छ रखना ज़रूरी है किन्तु वे इसी को सजाने और सँवारने में खोए रहते हैं। इस कोश पर भोजन का प्रभाव होता है। यदि भोजन शुद्ध हो तो यह स्थूल शरीर अपने भीतर के दूसरे तल को देखने में बाधक नहीं होता। यह शरीर पारदर्शी बन जाता है।

(ii) प्राणमय कोश

शरीर के दूसरे आवरण को प्राणमय कोश की संज्ञा दी गई है। प्राणमय कोश (Energy body) बाह्य शरीर के पीछे छिपा हुआ है। पत्थर के पास एक ही शरीर—बाह्य-शरीर होता है। पेड़-पौधों के भीतर अन्नमय कोश और प्राणमय कोश होता है अर्थात पेड़-पौधे दो कोश रखते हैं। उनके भीतर जीवन-धारा बह रही होती है। जब पौधा प्रफुल्लित होता है तब जीवन-धारा गहन रूप से बह रही होती है और जब कभी मुरझाया हुआ दिखाई देता है तो उस समय उसकी जीवन-धारा क्षीण हो चुकी होती है।

यह प्राणमय शरीर या प्राणमय कोश ऊर्जा से निर्मित होता है, जबकि बाह्य शरीर का निर्माण पदार्थ से होता है? यह प्राणमय शक्ति वायु, सूर्य, अगणित तारों आदि पर निर्भर करती है। आइंस्टीन ने सिद्ध

को बायो-एनर्जी (Bio-energy) कहा जाता है, अर्थात् जीव-ऊर्जा। मनुष्य की आँख अत्यन्त जीवन्त हिस्सा है जहाँ से प्राणमय शरीर बाहर झाँकता है।

इस प्राणमय शरीर को भी शुद्ध करते हैं और इसे शुद्ध करने की ज़रूरत होती है। इसे भी पारदर्शी बनाने की आवश्यकता होगी। आक्सीजन (प्राण-वायु) इसमें सहायक होता है। प्राणमय कोश वास्तव में ऊर्जा शरीर है। अतः ऑक्सीजन इसके लिए हितकर होती है। इससे प्राणमय कोश शुद्ध होता है।

(iii) मनोमय कोश

तीसरा शरीर मनोमय कोश है जो विचार से निर्मित होता है। विचार की हैसियत भी भोजन की समझनी चाहिए। पहला शरीर तो स्थूल देह अर्थात भौतिक काया है, फिर प्राण कोश है और उसके पीछे मन-शरीर है। मन और शरीर के बीच प्राण का सेतु है। मृत्यु में स्थूल शरीर नष्ट होता है किन्तु मनोमय शरीर नष्ट नहीं होता। वह अपने संस्कारों के साथ जीवित रहता है। एडिंगटन ने अपना अनुभव बयान किया है, कहा कि – "Thoughts are things." यानी, विचार की हैसियत वस्तु की है।

विचार अनुभव में आनेवाली सूक्ष्मतम चीज़ है। अब विचार का भी पदार्थगत अस्तित्व स्वीकार किया जाने लगा है। यद्यपि यह अत्यन्त सूक्ष्म है। विचारों से हमारे भीतर एक काया निर्मित होती है। इसलिए बहुत सावधान रहने की ज़रूरत है। ग़लत विचारों को कदापि हम अपने अन्दर जगह न दें। होना यह चाहिए कि हमारी मनोमय काया का निर्माण ऐसा हो कि वह ग़लत विचारों के लिए दीवार सिद्ध हो। ग़लत और अशुद्ध विचार हमारे मनोमय शरीर को प्रभावित न कर सकें।

हमारे विचार शुद्ध हों उनमें विरोधाभास न हो। उनमें सामंजस्य, लयबद्धता और एक समन्वय (Harmony) हो।

(iv) विज्ञानमय कोश

इस तीसरे कोश के पीछे चौथा शरीर है जिसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। यह कोश या शरीर चेतना, होश और बोध द्वारा निर्मित होता है। जब यह शरीर अनुभव में आता है तो विचार चेतना के आकाश में बादलों या उड़ते हुए बगुलों की तरह दिखाई देने लगते हैं। इस चौथे शरीर को विकसित करनेवाला व्यक्ति विचारों में घिरा नहीं रहता। ज़रूरत पड़ने पर वह विचारों का उपयोग कर लेता है। चौथे शरीर को ध्यान के द्वारा जगाया ज़ा सकता है। ध्यान वास्तव में चैतन्य या विज्ञान को बढ़ाता है।

(v) आनन्दमय कोश

चौथे कोश के पार जो काया या कोश है उसे आनन्दमय कोश की संज्ञा दी गई है। विज्ञान कोश जब अत्यन्त शुद्ध हो जाता है तो शीशे की तरह दिखाई नहीं देता। परिपूर्ण जागरूकता में भी आदमी को यह एहसास नहीं होता कि वह जागरूक है। अलबत्ता वह आनन्द से भर जाता है। यही आनन्द-काया है। यह भी काया है, आत्मा नहीं है। चौथी काया के लिए मूर्छा या बेहोशी नहीं, होश ही शुद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि पाँचवाँ शरीर शुद्धतम शरीर है किन्तु है यह भी काया ही। आनन्द भी एक प्रकार से हमारे आस-पास का घेरा जैसा है।

ज्ञानमय कोश का बोध हो जाए तो मन से छुटकारा मिल ज़ाता है और हम आगे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार आनन्दमय शरीर का होश आ जाए तो आदमी इससे भी आगे बढ़ जाता है और तब वह उसे पा लेता है जो वह है। अब वह अपने से दूर नहीं रहा। फिर वह काया और देह नहीं आत्मा है। आनन्दमय कोश एक प्रकार से आत्मा की चादर है।

पाँचवें शरीर अर्थात् आनन्दमय कोश तक पहुँचने के पश्चात् ईश्वर की करुणा उसे खींच लेती है। दूसरे शब्दों में पाँचवें कोश के पश्चात् अपने प्रयास से नहीं ईश्वर की करुणा ही आदमी का काम बनाती है और मनुष्य न केवल यह कि अपने-आप से निकट हो जाता है बल्कि परमात्मा को पाना उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है जो उसका आश्रय और आधार है।

मनोविज्ञान का परीक्षण

मनोविज्ञान ने इस सम्बन्ध में जो परीक्षण किया है उसपर भी एक दृष्टि डाल लेनी आवश्यक है क्योंकि उससे भी पता चलता है कि हम स्थूल शरीर ही नहीं हैं बल्कि हम शरीर से बढ़कर चेतना हैं। इस चेतना को समझे बिना हम अपने वास्तविक स्वरूप के विषय में अनभिज्ञ रहेंगे। और हम यह नहीं समझ सकेंगे कि हमारे कर्मों और हमारी गतिविधियों के पीछे क्या चीज़ें काम कर रही हैं। हम यदि बाह्य जगत् और जड़ शरीर को ही देखकर रह गए तो फिर हम अपनी असलियत और अपने स्वरूप से नितांत बेख़बर होकर जीवन व्यतीत करेंगे।

सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) के अनुसार चेतन और अचेतन (conscious and unconscious) इन दोनों के मिलने से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। फ्राइड के मतानुसार अचेतन मनुष्य की वास्तविक बुद्धि (Intellect) है जो बाह्य जगत् से बाहर एक मात्र सत्ता के रूप में मौजूद रहती है और चेतना केवल एक हिस्सा है जिसको बाह्य जगत् के निरीक्षण के लिए मस्तिष्क के निकट छोड़ा है। चैतन्य बुद्धि पूर्णतः अचेतन का उत्पादन है। अचेतन की अपेक्षा चेतन की मिसाल ऐसी है जैसे समुद्र के मुक़ाबले में झाग।

अचेतन एक अभौतिक सत्ता है जिसका देश एवं काल से कोई सम्बन्ध नहीं। भौतिक जगत् के तथ्यों को जानने के लिए वह चैतन्य

बुद्धि से मदद लेता है। यह निश्चित है कि एक अभौतिक सत्ता की भावनाओं की तृप्ति केवल ऐसी चीज़ से हो सकती है जो सौन्दर्य और परिपूर्णता के शिखर पर हो और जो अभौतिक हो।

अचेतन में कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका सम्बन्ध समय या काल से हो। अचेतन में वक़्त के गुज़रने का कोई निशान नहीं। वक़्त के गुज़रने से अचेतन के कार्य में कोई परिवर्तन नहीं होता।

अचेतन वास्तव में देश-काल से परे एक क्रियाशील सत्ता है जो किसी अनजानी सत्ता से प्रगाढ़ प्रेम और उसे पाने के लिए अतिरेक इच्छा और कामना रखती।

उसमें सोचा-समझा संकल्प नहीं। क्योंकि जिसकी उसे खोज है वह असीम सौन्दर्य और परिपूर्ण सत्ता है। मनुष्य की दृष्टि आत्मपरिचित की हैसियत से अपने शारीरिक अनुभवों के परे भी देख और समझ सकती है।

चेतन जब अचेतन का ही एक हिस्सा है, जिसे फ्रायड स्वीकार करता है, तो चेतना की मनोवृत्ति अपने पूर्ण भाग अचेतना से भिन्न नहीं हो सकती। अचेतन और उसकी इच्छा आध्यात्मिक होगी, योनिक (Sexual) नहीं होगी जैसा कि फ्रायड का विचार है या फिर योनिक अर्थ सामान्य अर्थ से भिन्न और व्यापक लिया जाए।

अचेतन के विषय में फ्राइड ने जो कुछ कहा है वह वही है जिसे हम आत्मा कहते हैं। मानव-आत्मा भौतिक नहीं, अतः उसे परितोष पूर्ण सौन्दर्य आदर्श के रूप में सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के प्रेम और अनुराग से ही प्राप्त हो सकता है? फ्रायड ने मानवीय कार्य आदि की प्रेरक शक्ति अचेतन को घोषित करके असाधारण बात कही है जिससे मानव-आत्मा के समझने में मदद मिलती है।

यह ध्यान में रहे कि यौन प्रकृति अपने अन्तिम अर्थों में रूहानी और आध्यात्मिक ही है। जीवन ईश्वर की कला एवं रचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जीवन को जब तक अपने स्रष्टा का ज्ञान नहीं होता उस दशा में भी मनुष्य ईश्वर से असंबद्ध नहीं रहता।

अचेतन जो चेतन को भौतिक जगत् के निरीक्षण के लिए लाया है मृत्यु के पश्चात् भी उसका सम्बन्ध अचेतन के साथ रहता है।

आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण

आत्मा या जीव का विशेष लक्षण चेतना है। आत्मा शरीर से सर्वथा पृथक् और भिन्न है, यद्यपि आत्मा का अनुभव हमें शरीर से होता है। शरीर चेतन आत्मा का जनक कदापि नहीं हो सकता। चेतन आत्मा वास्तव में शरीर का अधीश और उसका चालक है। हमें अपने चेतन अस्तित्व का निरंतर प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है। यदि आत्मा न हो तो दुःख-सुख, स्मृति और संकल्प आदि का अनुभव किसे होता है। हम आत्मा को ज्ञाता, भोगता और कर्त्ता आदि के रूप में जानते हैं। आत्मा का प्रत्यक्ष चैतन्य ज्ञान किसी-न-किसी गुण के द्वारा होता रहता है। यूँ तो हमें अपनी आत्मा का सीधा और प्रत्यक्ष ज्ञान होता है किन्तु दूसरे व्यक्तियों की आत्माओं का ज्ञान हमें उनके बुद्धि चालित कार्यों से होता है। क्योंकि हम जानते हैं कि बुद्धि चालित कार्यों का कारण यह अचेतन शरीर नहीं हो सकता। ऐसे कामों के सम्पन्न होने के लिए चेतन आत्मा की ज़रूरत है।

"मैं क़रता हूँ", "मैं करूँगा" वाक्यों में "मैं" की अनुभूति आत्मा का बोध कराती है। यदि कोई व्यक्ति इसमें सन्देह करता है तो उसका यह सन्देह करना भी स्वयं उसकी आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा होता है। आत्मा यदि नहीं है तो यह सन्देह किसे हो रहा है। ज्ञाता होने के कारण आत्मा स्वयं सिद्ध है।

हमारा चलना-फिरना और खाना-पीना आदि कार्य न हो पाते यदि शरीर का कोई चालक न होता।

हम किसी देखी हुई चीज़ को फिर कभी देखते हैं तो हमें यह अनुभूति होती है कि हम इसे पहले देख चुके हैं। यह स्मृति भी आत्मा के कारण सम्भव होती है।

सारांश यह कि हम कह सकते हैं: "मैं हूँ।" इससे आत्मा के अस्तित्व का पता चलता है। चेतना का आभास आत्मा की उपस्थिति को सिद्ध करता है। पलक खोलने या बन्द करने से आत्मा की सूचना मिलती है। मन की गति आत्मा की प्रेरणा के अभाव में सम्भव नहीं। इन्द्रियों के सुख-दुख और इच्छा आदि का कोई-न-कोई आश्रय होना चाहिए। वह आश्रय आत्मा ही है।

आत्मा का स्वरूप

आत्मा कोई जड़ शरीर नहीं है। वह अखंड और अविभाज्य सत्ता है। उसका प्रत्यक्षीकरण जड़-शरीर के रूप में नहीं होता। आत्मा चैतन्य तत्त्व है। भौतिक शरीर से उसका सम्पर्क होने के बावजूद वह शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से पृथक है। आत्मा एकरस है, उसमें कोई द्वैत नहीं। उसके खंड नहीं किए जा सकते। आत्मा स्वयं प्रकाश है। ज्ञान ही उसका स्वरूप है।

जिस प्रकार गुलाब के फूल के रंग आदि को देखकर हम कहते हैं कि हमने गुलाब देखा, इसी तरह आत्मा के गुणों को देखकर आत्मा की अनुभूति होती है। सुख-दुख और ज्ञान आदि धर्मों के अनुभव से बुद्धिमान को उनके धर्मों अर्थात् आत्मा का अनुभव होता है।

शरीर को इच्छानुसार परिचालित किया जाता है। अतः इसका कोई परिचालक होना चाहिए। वही आत्मा है। आँख-कान आदि इन्द्रियाँ ज्ञान के विभिन्न साधन हैं। इनसे ज्ञान-लाभ करनेवाले किसी की भी आवश्यकता है जो इन्हें प्रयोजनगत इस्तेमाल में लाता है। वास्तव में आत्मा ही है जो जड़ द्रव्यों की उत्पत्ति का निमित्त कारण है।

आत्मा नित्य और शरीर से भिन्न है। किन्तु उसकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। आत्मा सम्पूर्ण शरीर को प्रकाशित करती है। जीव की तरह आत्मा की कोई मूर्ति तो नहीं होती लेकिन जिस तरह प्रकाश स्थानानुसार रूप और आकार धारण करता है उसी तरह, आत्मा, का विस्तार भी शरीर के अनुसार होता है। इसी अर्थ में आत्मा को भी अस्तिकाय मानते हैं।

आत्मा की विशेषताएँ

आत्मा चैतन्य और अखंड है। इसे हिस्सों और भागों में विभक्त नहीं कर सकते। हम जानते हैं कि जिस जगह कोई जड़-द्रव्य मौजूद है वहाँ कोई जड़-पदार्थ प्रवेश नहीं कर सकता, किन्तु जहाँ कोई आत्मा है वहाँ दूसरी आत्माओं का भी सन्निवेश सम्भव है। ठीक उसी तरह जिस तरह एक स्थान पर दो या अधिक दीपक आलोकित हो सकते हैं, उसी तरह एक स्थान पर कई जीव या आत्माएँ वर्तमान हो सकती हैं। कोई शरीर किसी अन्य रूप को ग्रहण नहीं कर सकता जब तक कि वह अपने पहले रूप को त्याग न दे। शरीर का रूप यदि त्रिकोण है तो वह चतुर्भुज का रूप ग्रहण नहीं कर सकता जब तक कि वह त्रिकोण-रूप को छोड़ नहीं देता। किन्तु चेतना एक समय में विभिन्न रूपों की अनुभूति कर सकती है। इसी प्रकार शरीर एक अवस्था में परस्पर विरोधी चीज़ें स्वीकार नहीं कर सकता। यह सम्भव नहीं कि वह काला भी हो और सफ़ेद भी हो, वह गर्म भी हो और ठंडा भी, किन्तु आत्मा का मामला इससे भिन्न है। इंद्रियों का हाल यह है कि कान केवल सुन सकता है, देख नहीं सकता। आँख देखने का काम करती है सुनना उसके द्वारा सम्भव नहीं। किन्तु आत्मा एक साथ सब कुछ जान लेती है।

शरीर से आत्मा का सम्बन्ध प्राण-वायु (रूहे-हवाई) के द्वारा स्थापित होता है। प्राण-वायु का शरीर से विलग होने से आत्मा का सम्बन्ध शरीर से शेष नहीं रहता और आदमी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु वास्तव में

शरीर से आत्मा का केवल विच्छेद होना है। प्राण-वायु को अरबी में 'नसमा' कहते हैं। शरीर से अलग होकर आत्मा का अस्तित्व और व्यक्तित्व यथावत बना रहता है।

आत्मा मधु की मिठास को बुद्धि-ज्योति से महसूस करती है। जब मधु को ज़बान पर रखा जाता है तो आत्मा को मधु के स्वाद का अनुभव दिमाग़ या मस्तिष्क द्वारा होता है किन्तु आत्मा के लिए यह ज़रूरी नहीं। आत्मा अपने आन्तरिक गुणों के द्वारा स्वादिष्ट चीज़ों को चखती और ख़ुशबूदार चीज़ों को सूँघती है। मधुर आवाज़ों को सुनती है। सुख-दुख का एहसास करती है। मृत्यु के पश्चात् सांसारिक अनुभूति और एहसास विश्वसनीय और सुदृढ़ होता है।

आत्मा ही ज्ञान-प्रकाश है। जड़ में अनुभूति का गुण नहीं पाया जा सकता। बुद्धि की वृत्तियाँ चेतन आत्मा के समक्ष आ जाने से प्रकाशित होती हैं। अर्थात् बुद्धि में जानने और अनुभूति की जो प्रतीति होती है वह वास्तव में आत्मा या चेतन-सत्ता से ही होती है।

ज्ञानता एक ही है और वह आत्मा का स्वरूप है। जिस तरह प्रकाश कमरे के प्रत्येक भाग में फैलकर भी कमरे का कोई हिस्सा नहीं होता उसी तरह शरीर के प्रत्येक भाग से सम्पर्क रखकर भी आत्मा शरीर का कोई हिस्सा नहीं होती।

आत्मा और भारतीय दर्शन

उपनिषदों में आत्मा को परम सत् और परम तत्व माना गया है। आत्मा को जड़, जगत्, मन, बुद्धि और अहंकार आदि से भिन्न घोषित किया गया है। यह सर्वव्यापक, ज्योतिरूप और शाश्वत तत्व है। यह चैतन्य स्वरूप है। चित्तरूप और चैतन्य स्वरूप होने के कारण यह ब्रह्म का समकक्ष न होकर भी उसमें और ब्रह्म के मध्य एक प्रकार से अनुकूलता एवं अनुरूपता पाई जाती है। ब्रह्म ही है जो वाणी को

अभिव्यक्ति, आत्मा को कल्पना करने की शक्ति और इन्द्रियों को कार्य करने का सामर्थ्य प्रदान करता है।

आत्मा वास्तव में श्रवण का भी श्रवण, क्षेम का भी क्षेम, प्राणों का प्राण और इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आत्मा को मनोमय कहा गया है। यह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से भी महान है। आत्मा नित्य, सर्वगत, सूक्ष्म और ज्ञानी जन को गम्य है।

आत्मा की अवस्थाएँ

आत्मा-चेतन की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं। जागृत्, स्वप्न, सुषुप्ति (प्रज्ञ) और तुरीया। व्यावहारिक रूप में ये अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ हैं।

जागृति अवस्था में बाह्य संसार का ज्ञान प्राप्त होता है। आत्मा इन्द्रियों के द्वारा सांसारिक विषयों का भोग करती है।

स्वप्नावस्था में ज्ञान या चेतना के विषय आन्तरिक होते हैं। इस अवस्था में आत्मा को तेजस कहा जाता है।

सुषुप्ति की अवस्था में आत्मा आन्तरिक और बाह्य किसी विषय का उपभोग नहीं करती। आत्मा केवल आनन्द का भोग करती है। इस अवस्था में आत्मा का नाम प्रज्ञा है। आत्मा केवल साक्षी रूप में विद्यमान रहती है और अपने आनन्द रूप का अनुभव करती है।

तुरीया अवस्था आत्मा की चेतना की अवस्था है। इसमें बाह्य आन्तरिक और आनन्द किसी चीज़ का उपयोग नहीं करती। यह आत्मा की शुद्ध अवस्था है। इसे परम तत्व माना गया है।

जैन मत

जैन मत के अनुसार आत्मा या जीव का लक्षण चेतना है। वह नैसर्गिक रूप से, अनन्त शान्त, अनन्त दर्शन और अनन्त सामर्थ्य

से युक्त है। उसका अनुभव हमें यद्यपि शरीर से होता है लेकिन वह शरीर से बिल्कुल पृथक है। शरीर अजीव और जड़ तत्व है उसे चेतन आत्मा का जनक नहीं कहा जा सकता। चेतन-आत्मा वास्तव में शरीर की जनक और उसकी स्वामी है।

न्याय-दर्शन

न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। इच्छा, प्रयत्न और सुख आदि का वही आश्रय है। आत्मा न हो तो इनका आश्रय किसको कहा जाएगा। शरीर तो इनका आश्रय हो नहीं सकता।

आत्माएँ अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग आत्मा है। यदि आत्मा को अलग न माना जाए और कहा जाए कि आत्मा एक ही है जो सबके साथ लगी हुई है तो इस तरह तो सबका अनुभव एक ही होता। और एक के दुःख-सुख सबके दुःख-सुख होते। किन्तु ऐसा नहीं है। अतः मानना पड़ेगा कि प्रत्येक शरीर के साथ उसकी अपनी अलग आत्मा है।

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन के अनुसार आत्मा-शरीरबद्ध होने के बावुजूद शरीर से पृथक एक नित्य द्रव्य है। आत्मा निर्गुण, निष्क्रिय, मुक्त और शुद्ध है। फिर भी शरीर और मन के सम्पर्क में आ जाने के कारण वह सगुण सक्रिय हो जाती है।

शंकराचार्य वेदांत

शंकर वेदांत में आत्मा को विभु (सर्वत्र व्याप्त) स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार आत्मा सम्पूर्ण शरीर को चेतन्यमय करती है; ठीक उसी तरह जिस तरह दीपक का प्रकाश घर के पूरे कमरे को प्रकाशित कर देता है। और जिस प्रकार कमरे में फैलकर भी वह कमरे का कोई

हिस्सा नहीं बनता उसी प्रकार आत्मा भी शरीर का कोई हिस्सा या अंग नहीं बनती। वह शरीर से पृथक ही रहती है।

शंकर के दर्शन में जगत् नितांत-असत् नहीं है। जगत् के निर्माण के लिए ईश्वर को किसी बाह्य उपादान की ज़रूरत नहीं पड़ती। वह अपनी शक्ति से जगत् की रचना कर सकता है और की है। ईश्वर की इस शक्ति को शंकर ने माया की संज्ञा दी है। यह माया रहस्यमयी शक्ति है। उनके अनुसार सत्य वह है जो तीनों ही कालों में अस्तित्व रखता है। अनुभूत पदार्थ का अस्तित्व शंकर की दृष्टि में सत्ता के अन्य स्तर पर है। माया शून्यवत नहीं है। उसे अभाव रूप नहीं, भाव रूप ही कहा जाएगा।

ब्रह्म ही परम सत्य है। वह अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक और देश-काल से परे है। सम्पूर्ण जगत् का आधार वही है।

ब्रह्म शब्द ब्रह धातु से बना है। ब्रह्म का अर्थ होता है बढ़ना या विस्तार को प्राप्त होना। वह ब्रह्म है क्योंकि वह सब से महान सत्ता है।

रामानुजाचार्य

रामानुज वेदांत के अनुसार आत्मा का स्वाभाविक धर्म ज्ञान है। वह नित्य चैतन्य-द्रव्य है। जीवात्मा ईश्वर के चित्त अंश का व्यक्त रूप है। वह अनिवार्यतः ईश्वर पर आश्रित है। ईश्वर उस पर कदापि आश्रित नहीं है। आत्मा सांसारिक धर्म में कर्त्ता और भोगता है। ब्रह्म और आत्मा दोनों को पूर्णतः एक नहीं कहा जा सकता। दोनों में अभेद के साथ भेद भी है। यह जो कहा गया है : "तत्त्वमसि" (वह ब्रह्म तुम हो) या कहा गया है "अयमात्मा ब्रह्म।" (वह आत्मा ब्रह्म है) तो इस विषय में आचार्य रामानुज का कहना है कि इस प्रकार के महा वाक्य केवल इतना ही संकेत करते हैं कि आत्मा और परमात्मा की प्रकृति एक-सी है।

रामानुज ने सगुण ब्रह्म को ही परम तत्व स्वीकार किया है। उनके अनुसार ईश्वर को निर्गुण कहने का अर्थ केवल यह होता है कि वह बुरे गुणों से मुक्त है। ईश्वर में प्रकृतिजन्य अशुद्ध गुणों का अभाव है। जीवात्मा ब्रह्म के चित्त का व्यक्त रूप है। अतः आत्मा ईश्वर पर आश्रित है, ईश्वर जीवात्मा पर आश्रित नहीं।

माध्वाचार्य के वेदांत के अनुसार भी ईश्वर के निर्गुण होने का अभिप्राय ईश्वर का पूर्णतः दोषरहित होना है। श्रुति वचन "एकमेवाद्वितीय" या "सर्व खलु इदमं ब्रह्म" ये ब्रह्म और भौतिक पदार्थ के मध्य अभेद बताने के लिए नहीं बल्कि यह बताने के लिए कहे गए हैं कि जगत् की सत्ता और प्रकृति ब्रह्म के अधीन है।

उपनिषद् के महावाक्य इसी तथ्य को दर्शाते हैं। "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) "अयमात्मा ब्रह्म" (यह आत्मा ब्रह्म है), "तत्त्वमसि"। (वह ब्रह्म तू ही है)।

इन महावाक्यों से पता चलता है कि आत्मा और परमात्मा में घनिष्ट सम्बन्ध है। आत्मा अस्तित्ववान है। आत्मा का निषेध सम्भव नहीं। वह सत् रूप है। वह चित्त रूप है। ब्रह्म की तरह आत्मा भी विशुद्ध चेतना है। चेतना उसका आगंतुक गुण नहीं। वह ब्रह्म की तरह आनन्द स्वरूप है। लेकिन इस सबके बावुजूद आत्मा और परमात्मा दोनों (रामानुज और माध्वाचार्या) के अनुसार एक नहीं हैं। आत्मा परमात्मा पर आश्रित है जबकि परमात्मा किसी अन्य का आश्रय नहीं लेता। वह परम स्वतंत्र है।

पश्चिम के आधुनिक विचार भी भौतिकवाद से भिन्न लक्षित होते हैं। हेनरी बर्गसन (Henri Bergson) का बयान है :

> "आत्मा एक ऐसी चीज़ का नाम है जो अस्त-व्यस्त (Discompose) नहीं हो सकती। क्योंकि यह योगिक नहीं है।

अखंड है। यह विकृत होने योग्य नहीं है। कारण यह कि यह अविभाज्य है और अपने अस्तित्व की दृष्टि से शाश्वत है।"[1]

निकोलस बारड्यू (Nicholas Bardyeau) कहता है –

"मानव व्यक्तित्व परिवर्तनों के मध्य अपरिवर्तन (Changeless in Change) का नाम है।"

मृत्यु के सम्बन्ध में उसका कहना है–

"मृत्यु से मनुष्य का अन्त नहीं हो जाता। मृत्यु से केवल बाह्य अस्तित्व का अन्त होता है।"

वह कहता है–

"जो चीज़ मनुष्य में यांत्रिक रूप में काम करती है, जिसका कार्य केवल यंत्र जैसा है उसका मनुष्य के व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं। ईश्वर का प्रतिबिम्ब और यांत्रिक प्रतिबिम्ब नितांत परस्पर विरोधी चीज़ें हैं।"

1. The Two Sourses of Morality and Religion, P.251

आत्मा के प्रति इस्लाम की धारणा

इस्लाम ईश्वर की ओर से अवतरित धर्म है। इस्लाम द्वारा जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह पूर्ण भी है और प्रामाणिक भी।

इस्लाम के अनुसार सत्य यही है कि मनुष्य केवल शरीर नहीं है बल्कि वास्तव में वह रूह या आत्मा है। शरीर तो उसे इसलिए मिला है कि इस भौतिक जगत् में वह इससे काम ले। और अपने विशुद्ध विचारों और अपने अच्छे कर्मों के द्वारा अपने व्यक्तित्व का निर्माण करे और इस सम्बध में अपने स्रष्टा ईश्वर के दिए गए आदेशों के अनुसार जीवन-यापन करके इसका पात्र बन सके कि ईश्वर उसे शाश्वत आनन्दमय जीवन प्रदान करे। संसार में उसका रहना-सहना स्थायी नहीं है। यद्यपि ईश्वर ने उसके लिए यहाँ सुख और सुविधाओं की व्यवस्था की है किन्तु शाश्वत और पूर्णतः आनन्दमय जीवन जिसमें किसी प्रकार की आपदा, भय और शोक न हो वह वर्तमान जीवन के पश्चात प्राप्त होगा। लेकिन इसके लिए शर्त है– पात्रता की सिद्धि। यदि कोई व्यक्ति सरकश (उद्दण्ड) बन कर दुनिया में रहा और ईश्वर की योजना को ध्यान में नहीं रखा और न उसके आदेशों को जानने और समझने की ज़रूरत महसूस की, जीवन पर्यन्त ईश्वर के विरोध ही में खड़ा रहा तो अनिवार्यतः उसका ठिकाना नरक और जहन्नम है। जिससे वह छुटकारा न पा सकेगा क्योंकि उसका अपराध अक्षम्य है।

इस्लाम के अनुसार अमर जीवन मनुष्य की नियति है। इसके लिए जो प्रक्रिया-विधान है उसके अन्तर्गत मनुष्य अमर जीवन की पराकाष्ठा को प्राप्त होगा। शारीरिक मृत्यु उपरोक्त प्रक्रिया-विधान से सम्बन्धित एक सोपान है।

इस्लाम के अनुसार मृत्यु केवल शारीरिक होती है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की आत्मा और उसका व्यक्तित्व शेष रहता है। क़ुरआन में मरनेवाले के विषय में कहा गया है कि मृत्यु वास्तव में मनुष्य का प्रस्थान है, उसका अन्त नहीं।[1]

सांसारिक जीवन पारलौकिक जीवन के मुक़ाबले में कारागार के सदृश है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है–

"दुनिया मोमिन (सत्य के अनुयायी) का कारागार और अकाल-ग्रस्त स्थान है। फिर जब वह दुनिया को छोड़ता है तो कारागार और अकाल-ग्रस्त स्थल को त्यागता है।"

(हदीसः तबरानी)

मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह भी कहा है –

"ऐ अल्लाह, जो व्यक्ति जानता है कि मैं तेरा रसूल (सन्देश वाहक) हूँ, मृत्यु को उसके लिए प्रिय बना दे।"

(हदीसः तबरानी)

मृत्यु वास्तव में व्यक्ति को तंग दुनिया से मुक्त कर देती है और उसके लिए विस्तृत और विशाल लोक का द्वार खुल जाता है। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का कथन है –

"दुनिया से मनुष्य के निकलने को इस मिसाल जैसा पाता हूँ जैसे बच्चा अपनी माता के पेट से अर्थात् इस तंगी और अंधकार से दुनिया की कुशादगी में आता है।"

(हदीसः तिरमिज़ी)

ईश्वर अपने आज्ञाकारी और प्रिय बन्दों को जन्नत में जगह देगा। क़ुरआन में है –

---

1. देखें : क़ुरआन सूरा-75, क़ियामह, आयत-30।

> "ईशपरायण लोगों के लिए जन्नत का वादा है। उसकी शान यह है कि उसके नीचे नहरें बह रही हैं, उसके फल शाश्वत हैं, फिर इसी प्रकार छाया भी। यह परिणाम है उनका जो डर रखते है, जबकि इनकार करनेवालों का परिणाम आग है।" (क़ुरआन, सूरा-13, रअद, आयत-35)

नबी (सल्ल॰) ने कहा है कि जन्नत में एक जगह होगी जहाँ हूरें (जन्नत की सुन्दर स्त्रियाँ) एकत्र होकर उच्च स्वर में, जैसी मधुरतम आवाज़ दुनिया ने न सुनी होगी, गाएँगी, जिसका अर्थ यह है–

> "हम सदैव रहनेवाली हैं, कभी हम विनष्ट न होंगी, और हम आराम और सुखपूर्वक रहनेवाली हैं, कभी कठिनाई नहीं झेलेंगी। और हम राज़ी-प्रसन्न हैं, कभी नाराज़ (क्रुध) नहीं होंगी। उस व्यक्ति के लिए शुभ-ही-शुभ कि जो हमारा हो और हम उसकी हों।" (हदीसः तिरमिज़ी)

क़ियामत के दिन लोगों के विषय में अंतिम निर्णय सबके सामने आ जाएगा। किसी को जन्नत (वैकुंठ) में स्थान प्राप्त होगा और कोई नरकगामी होगा। जन्नत वाले जन्नत में सदैव रहेंगे और नरकगामी नरक में सदैव यातना-ग्रस्त रहेंगे। यातना से वे कभी भी छुटकारा न पा सकेंगे।

क़ियामत से पहले ईश्वर की प्रिय आत्माएँ सुख-शान्ति की दशा में रहेंगी और दुष्ट आत्माएँ दुर्दशा-ग्रस्त होंगी। क़ुरआन और नबी (सल्ल॰) के कथनों में सविस्तार इसका उल्लेख मिलता है।

एक बात यह भी ध्यान में रहे कि मृत्यु और क़ियामत के मध्य जो दूरी पाई जाती है वह मरनेवाले के लिए कोई बड़ी दूरी न होगी। काल या समय वास्तव में सापेक्ष (Relative) एहसास का नाम है।

परमात्मा (ईश्वर)

विषय प्रवेश

आत्मा के विषय में विचार करने के पश्चात हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि आत्मा का स्रोत क्या है? यह आत्मा किस सत्ता की रचना है? यह आत्मा किस पर आश्रित है और उसकी विशिष्टता और गुण क्या है? आत्मा परम स्वतन्त्र तो है नहीं कि हम यह कह सकें कि इसका कोई स्रष्टा नहीं है। हम दुनिया में स्वयं अपनी इच्छा से नहीं आए। शरीर के साथ हमारा जो सम्बन्ध है वह सम्बन्ध हमने स्थापित नहीं किया है। दुनिया से प्रस्थान भी हम अपनी इच्छा और संकल्प से नहीं करते। हमें स्वयं अपनी इच्छा और अपने व्यक्तित्व की सम्भावनाओं का भी पूर्ण ज्ञान नहीं है। हमें नहीं मालूम कि वर्तमान संसार को त्यागने के पश्चात् आत्मा कहाँ जाती है। अर्थात् वह किस लोक की ओर प्रस्थान करती है और प्रस्थान करती है तो वह लोक कैसा है? वर्तमान लोक में भी हम अपने से ज़्यादा किसी अव्यक्त सत्ता और उसकी शक्ति और सामर्थ्य पर निर्भर करते हैं। धरती हमने नहीं बनाई। सूर्य और चन्द्र हमने नहीं बनाए और न उनमें गति हमारे संकल्प से है। बादलों से पानी हम नहीं बरसाते। खेती और फल-फूल हम नहीं उगाते। वह वायु जिसका सेवन हम निरंतर करते रहते हैं हमारी पैदा की हुई नहीं है। सूर्य को धरती से 9 करोड़ 30 लाख मील की दूरी पर हमने नहीं रखा ताकि हम उसके ताप और प्रकाश से लाभ उठा सकें या उसकी अधिक निकटता में हम भस्म होकर रह जाते। और यदि वह न होता या इतनी

दूरी पर होता कि उचित मात्रा में हमें उसका ताप या गर्मी उपलब्ध न होती तो धरती पर जीवन सम्भव न होता।

वह अव्यक्त सत्ता जिसकी शक्ति, सामर्थ्य और अपार एवं असीम ज्ञान का परिचय हमें इस जगत् के माध्यम से होता है, उसके अस्तित्व में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। स्वयं हमारा अस्तित्व और हमारी आत्मा उसकी मौजूदगी का जीवन्त प्रमाण है। उसका इनकार स्वयं अपना इनकार है। और अपना इनकार, सम्भव नहीं, फिर उसका इनकार हम कैसे कर सकेंगे। वही सत्ता है जिसे विभिन्न नामों से हम पुकारते हैं। उसी को ईश्वर और परमात्मा कहा जाता है और अल्लाह भी।

अब हम देखना चाहेंगे कि भारत के मनीषियों और विचारकों ने ईश्वर या परमात्मा के विषय में क्या धारणा व्यक्त की है।

वैदिक एवं उपनिषद-दर्शन

परमात्मा या ईश्वर के अस्तित्वगत प्रमाण के सम्बन्ध में कई बातें कही गई हैं। उदाहरणार्थ इस जगत् से स्वयं ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह अनन्त गुरुभूत जगत् निराधार नहीं हो सकता। जगत् का कोई धारक है, वही परमात्मा है। धारक के रूप में अखंड शक्तिमान ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना ज़रूरी है। बिना शक्तिमान धारक के व्यवस्थापक जगत् का न अस्तित्व सम्भव है और न यह संसार सुचारु रूप से चल सकता है।

वेदों के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषि ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। उनका विश्वास एकेश्वरवाद में था। बहुदेववाद के वे समर्थक न थे। ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में आया है–

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद 1/164/46)

"एक ही सत्य है जिसे ज्ञानी लोग अनेक नामों से याद करते हैं।"

ज्योतिरसि विश्वरूपम्। (यजुर्वेद : 5/35)

"तू हर जगह मौजूद रहनेवाला प्रकाश है।"

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। (यजु. 32/3)

"उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। उसका यश बहुत बड़ा है।"

त्वं नो अन्तम उत त्राता। (ऋग्वेद 5/24/1)

"तू हम से निकट है और रक्षक है।"

त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान। (यजु. 29/9)

"त्वष्टा परमात्मा ही यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न करता है।"

ऋषियों ने इस परम सत्, प्रजापति परमात्मा को हिरण्यगर्भ का नाम भी दिया है। हिरण्यगर्भ का अर्थ है स्वर्णिम बीज, जो परम सामर्थ्ययुक्त है। अपने इस सामर्थ्य से वह आकाश और पृथ्वी सबको धारण करता और सब पर शासन करता है। आगे चलकर उसी को ब्रह्म कहा गया।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में आया है –

सृष्टि के आरम्भ में न सत् था न असत्। वहाँ न आकाश था, न वहाँ स्वर्ग ही विद्यमान था, जो उससे परे है। किसने उसे ढका था? वह कहाँ था? वह किसकी रक्षा में था? क्या उस समय गहन जल था जिसमें वह पड़ा था? उस समय मृत्यु थी न अमरत्व था। न दिन था और न रात। उस समय एक ही था जो वायुरहित होकर भी अपने सामर्थ्य से श्वास ले रहा था (अर्थात् जीवन्त था)। उसके अतिरिक्त कोई चीज़ न थी।

(ऋग्वेद, 10/129)

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी इसी सर्वव्यापी अद्वैत पुरुष की आध्यात्मिक धारणा मिलती है। "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।" अर्थात् जो भूतकाल में हुआ था और वर्तमानकाल में है तथा जो भविष्यकाल में होनेवाला है वह सब यह पुरुष ही है।[1]

उपनिषदों का भारतीय दर्शन में बड़ा महत्त्व है। उपनिषद अनेक हैं। सभी प्राचीन उपनिषद 300 ई॰ पू॰ के पहले की मानी जाती हैं। उपनिषदों के रचनाकारों ने अपने नामों का उल्लेख नहीं किया।

उपनिषदों में विभिन्न स्थानों पर परम या मूल तत्व, परम सत्य या परम ज्योति को ब्रह्म कहा गया है। अर्थात् वह ब्रह्म ब्रह्मत्तम यानी सर्वव्यापक और असीम है। उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि उस एक सत्ता के साक्षात्कार के पश्चात् कोई मोह और शोक शेष नहीं रहता।[2]

ब्रह्मज्ञानी को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है और व्यक्ति समस्त भय, दुख और सन्देह से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्म को परम ज्योति भी कहते हैं, उसी का प्रकाश है जिससे सारा जगत् प्रकाशित है। (कठोपनिषद 2/2/15)

ब्रह्म को अवर्णनीय कहा गया है किन्तु कहीं-कहीं उसे मनोमय, प्राणमय, आकाश, शरीर, सर्वकर्मा, सर्वगंध और सर्वरस भी कहा गया है। उसे जगत् की उत्पत्ति, पालन और लय का हेतु बताया गया है। प्राणमय, आकाश, शरीर या सर्वगंध और सर्वरस वास्तव में उसके गुणों का परिचय देने के लिए लाक्षणिक रूप में कहा गया है।

छान्दोग्योपनिषद में कहा गया है कि —

---

1. ऋ॰ 10/90/2

2. देखें : ईशोपनिषद्

"यह सम्पूर्ण जगत् निश्चय ब्रह्मस्वरूप है, यह उसी से उत्पन्न होता है, उसी में लय होता, उसी से संचालित होता है।"

(3/14/1)

तैत्तिरीयोपनिषद में है–

"वही आकाश की तरह व्यापक और आनन्द स्वरूप है। यदि वह न होता तो कौन जीवित रहता? कौन चेष्टाएँ करता? निश्चय ही वही सबको आनन्द प्रदान करनेवाला है। जब कोई जीवात्मा उस असदृश, शरीर रहित, अवर्ण्य, निराश्रय परमात्मा में निर्भय होकर स्थित हो जाता है तो वह अभयपद को प्राप्त होता है।"[1]

उपनिषदों में जीव और ब्रह्म को अभिन्न नहीं माना गया है। ब्रह्म और जीव में भेद स्वीकार किया गया है। ब्रह्म को जीवात्मा से श्रेष्ठ और भिन्न निरूपित किया गया है। और जगत् को मिथ्या भी नहीं कहा गया है।

सत्, आत्मन् और ब्रह्मन एकार्थ हैं। संसार इस सत् से उत्पन्न हुआ है। इसपर आश्रित भी है। ब्रह्म ही का नाम सत्य है, यह अनन्त ज्ञान तथा आनन्द है।

मुण्डकोपनिषद् के अनुसार सब पदार्थ उसी की ज्योति से ज्योतिमान हैं, उसी की ज्योति से सब विश्व प्रकाशित है। (2/2/10)

वह जगत का निमित्त-कर्ता है। रचना के लिए वह बाहरी तत्व पर निर्भर नहीं करता। उत्पादन कारण भी वही है। आत्मा से पदार्थ उसी तरह निकलता है जैसे प्रज्वलित अग्नि से चिंगारियाँ निकलती हैं या बाँसुरी से ध्वनि निकलती है। उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से सृष्टि

1. ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुवाक-7, मंत्र-1

उत्पन्न होती है। फिर जिस तरह सूर्य से प्रकाश निकलने से सूर्य अप्रभावित रहता है उसी तरह, ब्रह्म अप्रभावित रहता है। वह जगत् से परे भी रहता है।

न्याय-दर्शन

न्याय-दर्शन के अनुसार आत्मा के दो भेद हैं:

1. जीवात्मा और 2.परमात्मा।

ईश्वर और मनुष्य दोनों में आत्मा होने के बावुजूद बड़ा अन्तर पाया जाता है; धरती और आकाश का अन्तर। परमात्मा सर्वज्ञ, नित्य और परम स्वतंत्र है जबकि आत्मा अनित्य, अल्पज्ञ और वेधनग्रस्त है। परमात्मा आनन्दमय, समस्त दुःखों और कष्टों से परे है। वह आप्तकाम एवं सत्यवक्ता है। उसे कर्म की आवश्यकता नहीं, फिर भी वह विश्वकर्मा है।

वैशेषिक दर्शन

न्याय-दर्शन और वैशेषिक दर्शन में बड़ी समानता है। न्याय की तरह वैशेषिक दर्शन भी ईश्वरवाद का समर्थक है। परमात्मा को ईश्वर की संज्ञा दी गई है। ईश्वर पूर्ण है। वह विश्व का स्रष्टा, पालक और संहारक है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार मनुष्य मन के द्वारा अपनी आत्मा की अनुभूति कर सकता है। फिर परमात्मा का अस्तित्व अनुमान के द्वारा सिद्ध होता है।

सांख्य-दर्शन

यह दर्शन निरीश्वरवादी है। यह संसार की सृष्टि के लिए प्रकृति ही को पर्याप्त समझता है। किन्तु सांख्य के भाष्यकार विज्ञान भिक्षु ने यह

सिद्ध करने की कोशिश की है कि सांख्य ईश्वर को एक विशिष्ट पुरुष के रूप में स्वीकार करता है। ईश्वर प्रकृति का द्रष्टा है। वह प्रकृति का स्रष्टा नहीं है।

मीमांसा-दर्शन

मीमांसा-दर्शन के प्रवर्तक जैमिनी थे। मीमांसा-दर्शन ईश्वर को मानता है या नहीं इस विषय में विद्वानों में मतभेद पाया-जाता है। प्राचीन मीमांसकों के मुक़ाबले में बाद के मीमांसक जैसे कुमारिल और प्रभाकर आदि के यहाँ ईश्वर की स्वीकृति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

योग-दर्शन

योग-दर्शन में ईश्वर को प्रकृति और पुरुष से भिन्न और नित्य माना गया है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और पूर्ण है। वह ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है। ईश्वर को पुरुष माना गया है, किन्तु उसे साधारण अर्थों में नहीं। पतंजलि ने कहा है : ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से असंबद्ध अन्य पुरुषों से विशेष उत्कृष्ट पुरुष है। वह अखंड ऐश्वर्यवान है। पतंजलि का कहना है कि ईश्वर-प्रणिधान भी समाधि का एक साधन है जिसके द्वारा मुक्ति मिल सकती है। श्रुति और शास्त्र सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं।

वेदान्त

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में एक ऐसे पुरुष की धारणा प्रस्तुत की गई है जो सम्पूर्ण जगत् को प्राप्त है किन्तु वह ब्रह्मांड से परे भी है। इस धारणा को विकसित रूप में हम उपनिषदों में देखते हैं। उपनिषदों में उसे सत् आत्मन या ब्रह्म कहा गया है।

जिसके द्वारा जगत् की रचना हुई उसे ब्रह्म कहा गया है। जगत् का निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों ब्रह्म ही है। वह जगत् का

शक्तियाँ हैं किन्तु ब्रह्म इन शक्तियों का आश्रय होने पर इनसे भिन्न है। ब्रह्म अपनी इन दोनों शक्तियों से जगत् की रचना करता है। ब्रह्म-सूत्र के अनुसार ब्रह्म विश्व-व्याप्त है और वह विश्वातीत भी है। जगत् के सभी नामरूपों को उत्पन्न और निरूपित करनेवाला होते हुए भी वह अरूपवान है।

बौद्ध-दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया गया है। जैन मत में भी ईश्वर को विश्वनिर्माता नहीं मानते। ईश्वर के स्थान पर तीर्थंकरों का आदर करते हैं। महायान धर्म में महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उन्हें ईश्वर के पद पर आसीन किया गया है किन्तु हीनयान सम्प्रदाय प्रत्येक दृष्टि से अनीश्वरवादी है।

ईसाइयत ने त्रिवाद (Trinity) को स्वीकार कर रखा है। त्रियेक परमेश्वर की धारणा ने एकेश्वरवाद और ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने के विश्वास को जो क्षति पहुँचाई, वह स्पष्ट है। यहूदियों के यहाँ भी ईश्वर के प्रति धारणा विकृत होकर रह गई। ईसाइयों ने ईसा मसीह (अलैहि॰) को ईश्वर का पुत्र बना कर उन्हें ईश्वरत्व में साझीदार बनाया तो यहूदियों ने भी उज़ैर को ईश्वर का पुत्र घोषित कर दिया। ईसाइयों ने हज़रत ईसा मसीह (अलैहि॰) के अतिरिक्त मसीह की माता मरयम और पवित्र आत्मा (Holy ghost) को भी ईश्वरत्व में सम्मिलित कर दिया। ईश्वर के प्रति जब धारणा ही ग़लत हो गई तो ईसाइयत की शेष बातें भी अशुद्ध और अपूर्ण होकर रह जाती है। ईश्वर की शक्ति के विभाजित होने से ईश्वर का शाश्वतत्व (eternity) शेष नहीं रहता। जो शाश्वत और अनन्त न हो उसे ईश्वर कैसे कह सकेंगे।

इस्लाम

विभिन्न धर्मों विशेष रूप से भारतीय विचारधारा और भारतीय दर्शनों पर दृष्टि डालने के पश्चात् हम इस्लाम की शिक्षाओं पर एक दृष्टि डालना चाहेंगे। इस्लाम वास्तव में ईश्वर की ओर से एक निर्णायक धर्म के रूप में अवतरित हुआ है। इस्लाम के प्रकाश में हम यह देख सकते हैं कि सत्य कहाँ और कितना पाया जाता है। इस्लाम सत्य की पुष्टि करता और असत्य को असत्य बताता है। इस्लाम ही वास्तव में समस्त नबियों और पैग़म्बरों का धर्म रहा है। ईश्वर ने सदैव धर्म के विषय में मानवों का मार्ग-दर्शन किया है। संसार में शारीरिक रूप से हम जीवित रह सकें केवल इसी की उसने व्यवस्था नहीं की बल्कि हमारे आध्यात्मिक और नैतिक मार्गदर्शन की भी व्यवस्था की। इसी के लिए उसने अपने नबी या सन्देशवाहक भेजे जिन्होंने मानवों को बताया कि ईश्वर की ओर से उनके लिए क्या आदेश है और मनुष्य के जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? मनुष्य के लिए कहीं अमरत्व भी है या नहीं?

ईश्वर के अस्तित्ववान होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसने स्वयं हमें अपना ज्ञान दिया और हमारे जीवन में हमारे मार्गदर्शन की पूर्ण रूप से व्यवस्था की। उसने केवल हमें हमारी बुद्धि के हवाले नहीं किया बल्कि अपनी वाणी भी अवतरित की जिसके प्रकाश में हम अपनी बुद्धि और विवेक से सही काम ले सकें।

जो लोग या जो सम्प्रदाय आत्मा और ईश्वर में विश्वास नहीं रखते उनकी विवेकहीनता और संकुचित दृष्टिकोण पर हम जितना भी दुख प्रकट करें, वह थोड़ा है।

क़ुरआन में निरीश्वरवाद, बहुदेववाद और अनीश्वरवाद आदि का स्पष्टतः निषेध किया गया है। और कहा गया है कि ईश्वर यकता है। ईश्वर आश्रयमुक्त है। वह सर्वाधार और सबका आश्रय है। न वह जनिता है और न जन्य है। और न कोई उसका समकक्ष है। (देखें– क़ुरआन, सूरा-112, इख़्लास, आयत-1-4)

इस्लाम के अनुसार ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न है। अच्छे काम उसी के हैं अर्थात् वह समस्त अच्छे गुण और विशेषताएँ रखता है। (देखें– क़ुरआन, सूरा-17, बनी-इसराईल, आयत-10)। किन्तु उस जैसा कोई नहीं। प्रत्येक गुण उसके विशिष्ट हैं। सुनते और देखते हम भी हैं किन्तु उसके और हमारे देखने-सुनते में ज़मीन आसमान का अन्तर है। वह देखने के लिए हमारी तरह भौतिक आँखों पर आश्रित नहीं और न सुनने के लिए वह हमारी तरह कानों पर निर्भर करता है। लेकिन सच यह है कि आँखें उसी से देखतीं और कान उसी से सुनते हैं। हमें सुनने और देखने के लिए कान और आँखें उसी ने दी हैं।

ईश्वर के गुणों का उल्लेख करते हुए क़ुरआन में कहा गया है–

> "वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह परोक्ष और प्रत्यक्ष को जानता है। वह बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है। वही ईश्वर है जिसके सिवा कोई प्रभु-पूज्य नहीं। वह सम्राट है, अत्यन्त पवित्र, सर्वथा सलामती, निश्चिन्तता प्रदान करनेवाला, संरक्षक, प्रभुत्वशाली (टूटे हुए को जोड़नेवाला), अपनी बड़ाई प्रकट करनेवाला। महान् और उच्च है ईश्वर उस शिर्क (बहुदेववादी विचार और कर्मों) से जो लोग करते हैं। वही ईश्वर है जो संरचना का प्रारूपक है, अस्तित्व प्रदान करनेवाला, रूप देनेवाला है। उसी के लिए अच्छे नाम हैं। जो चीज़ भी आकाशों और धरती में हैं उसी की बड़ाई कर रही है। और वह प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-22-24)

क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर आया है —

"ईश्वर कि जिसके सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह जीवन्त सत्ता है, सबको संभालने और क़ायम रखनेवाला है। उसे न ऊँघ आती है और न निद्रा। उसी का है जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती में है। कौन है जो उसके यहाँ उसकी अनुमति के बिना सिफ़ारिश कर सके? वह जानता है जो कुछ उनके आगे है और जो कुछ उनके पीछे है। और वे उसके ज्ञान में से किसी चीज़ पर हावी नहीं हो सकते, सिवाय उसके जो उसने चाहा। उसकी कुर्सी (प्रभुत्व) आकाशों और धरती को व्याप्त है और उनकी सुरक्षा उसके लिए तनिक भी भारी नहीं और वह उच्च, महान है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-255)

ईश्वर के जिन्न वाचक नामों से इस्लाम ने परिचय कराया है, उनमें से कुछ ये हैं :

क्षमाशील, दानशील, फ़ैसला करनेवाला, सहनशील, गुणग्राहक, उच्च, प्रेम करनेवाला, समाईवाला, हक़ (सत्य), शक्तिशाली, सहायक, आश्रय से मुक्त, आश्रयदाता, अकेला, यकता, सामर्थ्यवान, आदि, अन्त, व्यक्त, अव्यक्त, न्यायशील, प्रकाशक, व्यापक, निकटतम, पूर्ण, सच्चा, सुन्दर।

इस्लाम ने ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। वे प्रमाण सामने के हैं। ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण धरती, आकाश, जगत् की व्यवस्था और मनुष्य का स्वयं अपना अस्तित्व भी है। संसार में हमारी समस्त सांसारिक ज़रूरतें सुचारु रूप से पूरी हो रही हैं और यह भी साफ़ मालूम होता है कि हमारी ज़रूरतें पूरी हो नहीं रही हैं बल्कि पूरी की जा रही हैं। अतः ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना हमारी बुद्धि और विवेक की अपेक्षा है। जगत् और हमारे अपने अस्तित्व के द्वारा जिस तत्वदर्शिता, दया और अनुकम्पा का प्रदर्शन हो रहा है वह इस बात

का सूचक है कि अनिवार्यतः कोई ईश्वर है। क्योंकि अनुकम्पा और तत्वदर्शिता किसी दयावान और तत्वदर्शी के बिना सम्भव नहीं। क़ुरआन के शब्द देखें जगत् और जीवन की व्यवस्था का वर्णन इस तरह किया गया है कि ईश्वर को स्वीकार करना हमारा परम कर्तव्य हो जाता है। क़ुरआन से केवल एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है –

> "क्या ऐसा नहीं है कि हमने धरती को बिछौना बनाया और पहाड़ों को मेख़? और हमने तुम्हें जोड़े-जोड़े पैदा किया और तुम्हारी निन्द्रा को थकान और क्लेश दूर करनेवाली बनाया।...... निश्चय ही फ़ैसले के दिन का एक नियत समय है।" (क़ुरआन, सूरा-78 नबा, आयत-6-17)

अपने उपकारों का विस्तृत वर्णन करके अन्त में कहा गया है कि निर्णय का एक दिन अवश्य आएगा जबकि यह बता दिया जाएगा कि लोगों में किसने अपने प्रभु-पालक को पहचानकर जीवन व्यतीत किया और किसने अंधा बनकर जानवरों की ज़िन्दगी गुज़ारी और सब कुछ देखते हुए ईश्वर की ओर से विमुख रहा और उसका कृतज्ञ होने की अपेक्षा अकृतज्ञ ही बना रहा। न तो अपने जीवन्त कृपांशील प्रभु को याद किया और न उसे प्रसन्न करने के लिए उसके आदेशों और उसकी इच्छा को जानने की उसे कोई चिन्ता हुई। और न उसे इसका ख़याल आया कि उसके लिए कोई पूर्ण और सर्वोच्च शुभ भी हो सकता है। कांट (Kant) ने लिखा है कि ईश्वर प्रकृति जगत् का अंग नहीं अपितु उसका कारण है और सुख तथा नैतिकता के सामंजस्य का आधार है। कांट ने कहा है कि सर्वोत्तम जगत् की सम्भावना से सर्वोच्च शुभ (Highest Good) अर्थात् ईश्वर की वास्तविकता प्रमाणित होती है। (Critique of Practical Reason, P.29)

क़ुरआन में ईश्वर का एक नाम 'हक़' और 'हक़्क़े-मुबीन' अर्थात् सत्य और स्पष्ट सत्य आया है। (22:6, 24:25) ईश्वर का यह नाम

अत्यन्त अर्थपूर्ण है। हक़ के कई अर्थ होते हैं। यह अत्यन्त संग्राहक शब्द है। हक़ वह है जो तथ्य हो, कोई ख़याल और भ्रम न हो। जो शाश्वत और नित्य हो, अस्थायी न हो। जिसमें व्यापकता की विशेषता पाई जाए, किसी पहलू से जो संकुचित न हो। जो पर्याप्त और पूर्ण हो। किसी पर आश्रित न हो। जो जीवन्त हो, एक हो, अनेक न हो। जो ख़ैर अर्थात् शिवम् (Good) और शुभ हो। जो सौन्दर्यवान और रमणीय (Pleasant) हो। धारण करने योग्य हो। जिसे अस्वीकार करना असम्भव हो। जो उपस्थित हो, दूर न हो। जिसकी कामना की जा सके अर्थात् कामना के योग्य (Desirable) हो, यही नहीं बल्कि जिसका आनन्द ले सकें। जो हमारे आनन्द का कारण (Enjoyable) हो। जिससे किसी अन्याय का भय न हो, जिसमें स्वाभिमान हो, जो प्रतापवान हो।

फिर ईश्वर केवल हक़ ही नहीं बल्कि स्पष्ट रूप से हक़ है। हक़ को व्यक्त करनेवाला है। उसमें उपर्युक्त समस्त गुण विद्यमान हैं। उससे विमुख होने का अर्थ आत्मघात के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। कोई और नहीं हम उसी पर आश्रित हैं।

ईश्वर ने जिस धर्म (इस्लाम, आत्म-समर्पण) की शिक्षा दी है उसमें 'हक़' (सत्य) के समस्त गुण पाए जाते हैं। इस्लाम ईश्वरीय गुणों की प्रतिच्छाया (Reflection) है। अब यदि कोई सत्य, सुन्दर और शुभ की उपेक्षा करता है तो या तो वह अज्ञान-ग्रस्त है या जानते-बुझते उद्दण्डता एवं धृष्टता अपनाए हुए है।

क़ुरआन में ईश्वर को 'ख़ैर' (शुभ, उत्तम, शिवम्) भी कहा गया है (सूरा-20 ता॰ हा॰, आयत-73)। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) कहते हैं कि ईश्वर सौन्दर्यवान है और सौन्दर्य को पसन्द करता है। (हदीसः मुस्लिम) सौन्दर्य प्रकाश है। वेद में है : आदमी अपने प्रकाश में वास करता है। अब यदि वह प्रकाश अशुभ है तो फिर उसे अंधकार से कौन निकाल सकता है।

ईश्वर ने जिस धर्म अर्थात् इस्लाम की शिक्षा दी है वही सनातन धर्म है। मानव-इतिहास में उसी की शिक्षा महापुरुषों और पैग़म्बरों ने दी है। उसी की शिक्षा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने भी दी है। वे सत्यवादियों के प्रतिनिधि हैं। वे पैग़म्बरों के सिलसिले की अन्तिम कड़ी हैं। क़ुरआन में जो शिक्षाएँ दी गईं वे सत्य हैं। उनमें सत्य या हक़ की वर्णित सभी विशेषताएँ वर्तमान हैं। वे ईश्वर के गुणों से उद्धृत (Derived) हैं।

कहा जाता है कि भारत में सत्य पर विशेष ज़ोर दिया गया है। ईरान में सुन्दरता को अधिक महत्त्व देते थे। अरब ख़ैर (भलाई) पर ज़ोर देते रहे हैं। इस्लाम ने इन सबको महत्त्व देते हुए अपने में समो लिया है। इसी लिए इसे दीने-हक़ (सत्य-धर्म) कहा गया है। (देखें क़ुरआन 10:15, 44:39, 45:22)। इस्लाम का आधार ईश्वर के गुण, वह सत्य और न्याय है जो सम्पूर्ण जगत् का आधार है।

इस्लाम एक पूर्ण धर्म और न्याय पर आधारित जीवन-व्यवस्था है। वह हमें केवल यही शिक्षा नहीं देता कि हम ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करें और हमें ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो बल्कि इसके साथ वह इसकी भी शिक्षा देता है कि हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए ईश्वर के जो आदेश हैं उनको जानें और उनका पालन करें। ईश्वर ने जो आदेश मानवों को दिए हैं, वही इस्लाम की शिक्षाएँ हैं। इन शिक्षाओं का सम्बन्ध मात्र विचार और धारणाओं ही से नहीं है बल्कि उनका सम्बन्ध, जैसा कि ऊपर कहा गया, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से है। वह व्यक्तिगत जीवन हो या सामाजिक जीवन हो, वह अर्थव्यवस्था हो या राजनीति, बात युद्ध की हो या सन्धि की, ईश्वर ने प्रत्येक मामले में हमारा मार्गदर्शन किया है। इस्लाम में आध्यात्म, उपासना और पूजा आदि की शिक्षा भी दी गई है। उसने उपासना के नियम और उसके विधि-विधान दिए हैं। पूजा वास्तव में प्रेम का अतिरेक है। ईश्वर जो हमारा वास्तविक प्रेमपात्र है उसके सम्बन्ध में क़ुरआन में कितनी प्यारी बात कही गई है

कि रात गए तक उसका सुमिरन करो और उसके प्रेम का आनन्द लो (क़ुरआन, सूरा-76 दह्र, आयत-26)।

हमने हर चीज़ का आनन्द लिया लेकिन यदि अपने प्रेमपात्र ईश्वर के प्रेम का आनन्द न लिया तो जीवन में कुछ भी न किया।

इस्लाम जहाँ मानव के लिए एक शुभ-सूचना है, वहीं वह चेतावनी (Warning) भी है। सत्य और ईश्वर के सत्य सन्देश का इनकार ऐसा अपराध है जो अक्षम्य है। ईश्वर के आदेशों की अवहेलना ही के कारण धरती अन्याय और अत्याचार से भर जाती है। यह तो वर्तमान जीवन में ईश्वरीय सन्देश और उसके आदेशों के निरादर का परिणाम होता है, परलोक में ज़ालिमों और सत्य के विरोधियों का ठिकाना नरक होगा, जिसमें वे सदैव ईश्वर के प्रकोप में ग्रस्त होंगे और नरक-यातना ही उनका जीवन होगा। सारांश यह है कि इस्लाम मानवता के लिए शुभ सूचना और सत्य-मार्ग है और सत्य के विरोधियों के लिए चेतावनी है। अब देखना यह है कि कौन इसे समझने की कोशिश करता और अपने जीवन को सफल बनाता है और जीवन के भयावह परिणाम से अपने को बचाने के लिए कोशिश करता है।

❖ ❖ ❖